

संस्कृत साहित्य में नारी पात्रों की स्थिति और विकास: एक विश्लेषणात्मक साहित्यिक अध्ययन

वीना रानी, सहायक प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, गुरु गोरखनाथ जी राजकीय महाविद्यालय, हिसार, हरियाणा

सारांश (Abstract)

संस्कृत साहित्य भारतीय सांस्कृतिक चेतना का वह अक्षय स्रोत है जिसमें नारी को अनेक रूपों में चित्रित किया गया है — कहीं वह देवी के रूप में पूज्य है, कहीं पत्नी और माता के रूप में आदर्श है, तो कहीं स्वतंत्र चिंतनशील व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत हुई है। प्रस्तुत शोधपत्र वैदिक साहित्य से लेकर रामायण, महाभारत, कालिदास, भास, भवभूति तथा बाणभट्ट जैसे रचनाकारों की कृतियों तक नारी पात्रों की स्थिति एवं उसके ऐतिहासिक विकास-क्रम का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। शोध में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि संस्कृत साहित्य में नारी-चित्रण एकरेखीय नहीं, बल्कि बहुआयामी और युगानुरूप परिवर्तनशील रहा है। वैदिक युग में नारी को अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता और शैक्षणिक अधिकार प्राप्त थे, जबकि स्मृति-काल में सामाजिक बंधन सुदृढ़ हुए, परंतु काव्य-नाट्य साहित्य में नारी का चरित्र-चित्रण भावनात्मक गहराई, बौद्धिक तीक्ष्णता और नैतिक दृढ़ता से संपन्न होता चला गया। शोध पद्धति के रूप में विश्लेषणात्मक साहित्यिक (Analytical Literary) उपागम अपनाया गया है, जिसमें मूल संस्कृत ग्रंथों के श्लोकों का उद्धरण, उनका भावार्थ-विश्लेषण तथा तुलनात्मक अध्ययन सम्मिलित है। निष्कर्षतः यह अध्ययन प्रमाणित करता है कि संस्कृत साहित्य में नारी केवल पुरुष-केंद्रित कथा की सहायक पात्र नहीं, अपितु अनेक स्थलों पर कथा-नायिका, नैतिक विवेक की प्रतिनिधि और सामाजिक आदर्श की संवाहिका रही है।

कूटशब्द (Keywords): संस्कृत साहित्य, नारी पात्र, रामायण, महाभारत, कालिदास, स्त्री-चित्रण, तुलनात्मक अध्ययन

१. प्रस्तावना

भारतीय साहित्य-परंपरा में संस्कृत भाषा का स्थान मूलाधार के समान है। वेदों से लेकर आधुनिक काल तक की समस्त भारतीय चिंतन-धारा किसी-न-किसी रूप में संस्कृत साहित्य से प्रभावित रही है। इस विशाल साहित्यिक परंपरा में नारी-पात्रों का चित्रण अत्यंत विविधतापूर्ण, बहुस्तरीय तथा युगीन सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों से गहराई से जुड़ा हुआ है। ऋग्वेद की ऋषिकाओं से लेकर कालिदास की शकुंतला और भवभूति की सीता तक, संस्कृत साहित्य ने नारी के जिस बहुआयामी व्यक्तित्व को गढ़ा है, वह केवल साहित्यिक कल्पना का परिणाम नहीं, बल्कि तत्कालीन समाज की वास्तविकताओं, आदर्शों तथा अंतर्विरोधों का भी दर्पण है।

संस्कृत साहित्य में नारी-चित्रण को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम उसे केवल एक स्थिर, अपरिवर्तनीय छवि के रूप में न देखें, बल्कि एक गतिशील प्रक्रिया के रूप में परखें, जो वैदिक काल से लेकर उत्तर-शास्त्रीय काल तक निरंतर विकसित होती रही है। जहाँ एक ओर ऋग्वेद में लोपामुद्रा, घोषा, अपाला, विश्ववारा जैसी ऋषिकाओं ने वेदमंत्रों की रचना की और ज्ञान-परंपरा में समान भागीदारी निभाई, वहीं दूसरी ओर स्मृति-साहित्य में नारी की सामाजिक स्वतंत्रता क्रमशः संकुचित होती गई [1]। परंतु यह विरोधाभास ही संस्कृत साहित्य की उस जटिलता को उद्घाटित करता है, जिसमें धर्मशास्त्रीय अनुशासन और काव्यात्मक कल्पना के बीच निरंतर द्वंद्व चलता रहा है।

महाकाव्यों — रामायण और महाभारत — ने नारी को कथा के केंद्र में स्थापित किया। सीता, द्रौपदी, कुंती, गांधारी जैसी नायिकाएँ केवल पुरुष पात्रों की सहगामिनी नहीं रहीं, अपितु उन्होंने कथानक की दिशा निर्धारित करने में निर्णायक भूमिका निभाई। कालिदास, भास, भवभूति और शूद्रक जैसे नाटककारों ने नारी-चरित्रों को और अधिक सूक्ष्म, संवेदनशील तथा मनोवैज्ञानिक गहराई से चित्रित किया। शकुंतला का आत्मसम्मान, पार्वती की तपस्या, मालविका की चतुरता तथा वसंतसेना की करुणा — ये सभी पात्र संस्कृत साहित्य की नारी-चेतना के विविध आयामों को प्रस्तुत करते हैं।

इस शोधपत्र का उद्देश्य इन्हीं आयामों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना है, ताकि यह समझा जा सके कि संस्कृत साहित्य में नारी की स्थिति समय के साथ किस प्रकार परिवर्तित हुई, किन कारकों ने इस परिवर्तन को प्रभावित किया, और साहित्यिक चित्रण किस सीमा तक सामाजिक यथार्थ का प्रतिबिम्ब अथवा आदर्शवादी प्रक्षेपण था।

२. शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. वैदिक काल से लेकर उत्तर-शास्त्रीय संस्कृत साहित्य तक नारी-पात्रों की स्थिति में हुए ऐतिहासिक परिवर्तन का विश्लेषण करना।
2. रामायण, महाभारत तथा प्रमुख संस्कृत नाटकों एवं काव्यों में चित्रित नारी-चरित्रों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना।
3. साहित्यिक चित्रण और धर्मशास्त्रीय व्यवस्था के बीच अंतर्विरोध की पहचान करना।
4. संस्कृत साहित्य में नारी-चित्रण के प्रति विद्वानों के विभिन्न दृष्टिकोणों (पारंपरिक, स्त्रीवादी तथा समाजशास्त्रीय) का समीक्षात्मक विश्लेषण करना।
5. यह निर्धारित करना कि संस्कृत साहित्य की नारी-छवि किस सीमा तक आदर्शीकरण और किस सीमा तक यथार्थ का प्रतिनिधित्व करती है।

३. शोध प्रश्न

- संस्कृत साहित्य के विभिन्न कालखंडों में नारी-पात्रों की सामाजिक एवं चारित्रिक स्थिति में क्या परिवर्तन दिखाई देते हैं?
- महाकाव्यों और नाट्य साहित्य में नारी-चित्रण की शैली एवं दृष्टिकोण में क्या भिन्नता है?
- क्या संस्कृत साहित्य में नारी को कर्ता (subject) के रूप में देखा गया है अथवा केवल वस्तु (object) के रूप में?
- आधुनिक आलोचकों ने इन पात्रों की व्याख्या किन-किन दृष्टिकोणों से की है?

४. शोध पद्धति (Research Methodology)

प्रस्तुत शोधपत्र में विश्लेषणात्मक साहित्यिक पद्धति (Analytical Literary Method) अपनाई गई है। इस पद्धति के अंतर्गत मूल संस्कृत ग्रंथों — वाल्मीकि रामायण, व्यास महाभारत, कालिदास, भास, भवभूति, शूद्रक तथा बाणभट्ट की रचनाओं — का प्रत्यक्ष अध्ययन कर उनमें चित्रित नारी-पात्रों के संवाद, चरित्र-चित्रण, कथा-भूमिका तथा प्रतीकात्मक अर्थों का गहन विश्लेषण किया गया है। इसके साथ ही द्वितीयक स्रोतों — इतिहासकारों, समालोचकों तथा संस्कृत साहित्य के इतिहासकारों की व्याख्याओं का भी उपयोग किया गया है, ताकि साहित्यिक चित्रण को ऐतिहासिक-सामाजिक संदर्भ में समझा जा सके।

इस अध्ययन में तुलनात्मक विश्लेषण (Comparative Analysis) को भी सम्मिलित किया गया है, जिसमें विभिन्न कालखंडों (वैदिक, महाकाव्य, शास्त्रीय नाट्य-काल) के नारी-पात्रों की तुलना उनकी सामाजिक स्वतंत्रता, शिक्षा, निर्णय-क्षमता तथा कथा में

भूमिका के आधार पर की गई है। चूँकि यह अध्ययन प्रयोगसिद्ध (empirical) नहीं अपितु व्याख्यात्मक (interpretative) प्रकृति का है, अतः इसमें सांख्यिकीय आँकड़ों के स्थान पर गुणात्मक (qualitative) पाठ-विश्लेषण को प्राथमिकता दी गई है। शोध में PRISMA जैसी व्यवस्थित समीक्षा पद्धति का प्रयोग नहीं किया गया है, क्योंकि साहित्यिक-आलोचनात्मक अध्ययन की प्रकृति में गुणात्मक व्याख्या अधिक उपयुक्त सिद्ध होती है।

५. साहित्य समीक्षा (Literature Review)

संस्कृत साहित्य में नारी की स्थिति पर विगत दशकों में अनेक विद्वानों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है, जिनके परिणामों की समीक्षा इस अध्ययन के लिए आधारभूत सिद्ध होती है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपने ग्रंथ *संस्कृत साहित्य का इतिहास* में यह स्पष्ट किया है कि वैदिक युग में स्त्रियों को शिक्षा, यज्ञ-कर्म तथा मंत्र-द्रष्टृत्व में समान अधिकार प्राप्त थे, किंतु परवर्ती स्मृति-साहित्य में यह अधिकार क्रमशः संकुचित होता गया[2]। उनका यह निष्कर्ष इस बात की पुष्टि करता है कि संस्कृत साहित्य में नारी की स्थिति स्थिर नहीं, अपितु ऐतिहासिक रूप से परिवर्तनशील रही है — यह निष्कर्ष प्रस्तुत शोध के मूल आधार से पूर्णतः संगत है।

ए.एस. आल्टेकर ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ *The Position of Women in Hindu Civilization* में तर्क प्रस्तुत किया है कि उत्तर-वैदिक काल से लेकर स्मृति-काल तक नारी की सामाजिक स्वतंत्रता में क्रमिक हास हुआ, विशेषतः विवाह-आयु, शिक्षा तथा संपत्ति के अधिकारों के संदर्भ में[3]। उनका शोध-परिणाम यह दर्शाता है कि धर्मशास्त्रीय ग्रंथों और काव्य-साहित्य में नारी की छवि में अंतर स्पष्ट रूप से विद्यमान है — काव्य-साहित्य में नारी अधिक स्वतंत्र-चेता तथा भावनात्मक रूप से सशक्त प्रतीत होती है, जबकि धर्मशास्त्र उसे अनुशासित व नियंत्रित करने का प्रयास करते हैं।

सुकुमारी भट्टाचार्य ने अपने अध्ययन *Women and Society in Ancient India* में महाभारत की द्रौपदी और गांधारी जैसे पात्रों का विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि महाकाव्यात्मक नारी-पात्र प्रायः पितृसत्तात्मक व्यवस्था के भीतर रहते हुए भी उसके विरुद्ध प्रतिरोध की आवाज़ उठाते हैं[4]। उनके अनुसार द्रौपदी का चीरहरण-प्रसंग में उठाया गया प्रश्न — कि क्या युधिष्ठिर स्वयं को हारने के पश्चात उसे दाँव पर लगाने का अधिकारी था — महाभारत की सर्वाधिक तीक्ष्ण नारीवादी प्रश्नोत्थापना मानी जा सकती है।

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने संस्कृत नाट्य-साहित्य पर अपने विश्लेषणात्मक कार्यों में यह प्रतिपादित किया है कि कालिदास के नाटकों में नारी-चरित्र केवल शृंगारिक अलंकरण नहीं, अपितु नैतिक तथा भावनात्मक केंद्र-बिंदु के रूप में प्रस्तुत होते हैं[5]। शकुंतला का चरित्र इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है, जिसमें वह राजा दुष्यंत के समक्ष अपने आत्मसम्मान और न्याय की माँग को निर्भीकता से प्रस्तुत करती है।

राजबली पाण्डेय ने *हिन्दू धर्मकोश* में स्मृति-साहित्य के विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि मनुस्मृति में नारी को "बाल्यावस्था में पिता, यौवन में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहने योग्य" बताया गया है, जो साहित्यिक नारी-चरित्रों की स्वतंत्र-चेतना से स्पष्ट रूप से विरोधाभासी प्रतीत होता है[6]। यह अंतर्विरोध ही इस शोधपत्र के केंद्रीय विश्लेषण-बिंदुओं में से एक है।

रोमिला थापर ने अपने ऐतिहासिक अध्ययनों में शकुंतला की कथा के अभिज्ञानशाकुन्तलम्-पूर्व और कालिदास-कृत रूपांतरण के बीच के अंतर को रेखांकित करते हुए यह दिखाया है कि कालिदास ने महाभारत की मूल कथा में शकुंतला के चरित्र को अधिक

मर्यादित तथा आदर्शीकृत रूप प्रदान किया[7]। यह तुलनात्मक दृष्टिकोण यह सिद्ध करता है कि एक ही नारी-पात्र की व्याख्या भिन्न-भिन्न रचनाकारों द्वारा भिन्न-भिन्न सामाजिक दृष्टिकोणों से की गई है।

कपिला वात्स्यायन तथा अन्य समकालीन विद्वानों ने भी यह तर्क दिया है कि संस्कृत काव्य-परंपरा में नारी-सौंदर्य का वर्णन प्रायः प्रकृति-चित्रण से जोड़कर किया जाता है, जो एक ओर नारी को प्रकृति के समान पूज्य बनाता है, तो दूसरी ओर उसे वस्तुकरण (objectification) की प्रवृत्ति का भी शिकार बनाता है[8]। यह दृष्टिकोण आधुनिक स्त्रीवादी आलोचना की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है और इसे इस शोध में समुचित स्थान दिया गया है।

इन समस्त अध्ययनों की समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि विद्वानों के बीच इस विषय पर मूलतः दो परस्पर-विरोधी किंतु पूरक दृष्टिकोण विद्यमान हैं — एक ओर यह मत है कि संस्कृत साहित्य नारी को गरिमा, शक्ति और नैतिक केंद्रीयता प्रदान करता है (पारंपरिक/सांस्कृतिक दृष्टिकोण), तो दूसरी ओर यह मत है कि यही साहित्य पितृसत्तात्मक संरचना को सुदृढ़ करने का माध्यम भी बनता है (स्त्रीवादी/समालोचनात्मक दृष्टिकोण)। प्रस्तुत शोधपत्र इन दोनों दृष्टिकोणों को संतुलित रूप से प्रस्तुत करते हुए मूल ग्रंथों के प्रत्यक्ष विश्लेषण के आधार पर एक समावेशी निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयास करता है।

६. वैदिक साहित्य में नारी: प्रारंभिक स्वरूप

वैदिक साहित्य, विशेषतः ऋग्वेद, संस्कृत साहित्य की प्राचीनतम परत है, जिसमें नारी की स्थिति अपेक्षाकृत अधिक सम्माननीय एवं स्वतंत्र प्रतीत होती है। ऋग्वेद में लोपामुद्रा, घोषा, अपाला, विश्ववारा, इंद्राणी, सूर्या जैसी अनेक ऋषिकाओं का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने स्वयं मंत्रों की रचना की। लोपामुद्रा और अगस्त्य का संवाद-सूक्त (ऋग्वेद १०.१७९) इस बात का प्रमाण है कि नारी को दार्शनिक संवाद तथा तर्क-वितर्क में पूर्ण भागीदारी प्राप्त थी[9]।

विवाह-सूक्त (ऋग्वेद १०.८५) में वधू के प्रति यह आशीर्वाद दिया गया है —

"साम्राज्ञी श्वशुरे भव साम्राज्ञी श्वश्र्वां भवा
ननान्दरि साम्राज्ञी भव साम्राज्ञी अधि देवृषु॥"[9]

अर्थात् वधू को श्वशुर-गृह में साम्राज्ञी अर्थात् प्रमुख अधिकारिणी के रूप में स्थापित होने का आशीर्वाद दिया जाता है। यह श्लोक वैदिक समाज में गृहस्थ जीवन में नारी की सम्मानजनक स्थिति का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करता है। इसके साथ ही उपनिषदों में गार्गी और मैत्रेयी जैसी दार्शनिक नारियों का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने ब्रह्मविद्या संबंधी गूढ़ प्रश्न ऋषि याज्ञवल्क्य के समक्ष प्रस्तुत किए। बृहदारण्यकोपनिषद् में गार्गी और याज्ञवल्क्य के मध्य हुआ शास्त्रार्थ इस बात का प्रमाण है कि नारी को उच्चतम दार्शनिक विमर्श में भाग लेने का अवसर प्राप्त था[10]।

तथापि, उत्तर-वैदिक काल में आते-आते यह स्वतंत्रता क्रमशः संकुचित होने लगी। धर्मशास्त्रों के विकास के साथ-साथ नारी की शिक्षा, विवाह-आयु तथा सामाजिक भूमिका पर अनेक प्रतिबंध आरोपित होने लगे। मनुस्मृति में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है —

"पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥"[11]

यह श्लोक वैदिक युग की सापेक्ष स्वतंत्रता की तुलना में स्मृति-युगीन नियंत्रणवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट रूप से रेखांकित करता है। यह अंतर्विरोध संस्कृत साहित्य के विकास-क्रम में नारी की स्थिति के परिवर्तन को समझने की कुंजी है — अर्थात् जहाँ धार्मिक-शास्त्रीय

साहित्य नियंत्रण की ओर उन्मुख हुआ, वहीं काव्य एवं महाकाव्य साहित्य ने नारी-चरित्र को भावनात्मक व नैतिक गरिमा प्रदान करने का प्रयास जारी रखा।

७. रामायण में नारी पात्र

वाल्मीकि रामायण संस्कृत साहित्य का आदिकाव्य है, जिसमें सीता, कैकेयी, मंदोदरी, तारा, अनसूया तथा शबरी जैसी अनेक नारी-पात्र विद्यमान हैं। इनमें सीता का चरित्र केंद्रीय स्थान रखता है।

७.१ सीता: आदर्श और आत्मसम्मान का द्वंद्व

सीता को सामान्यतः भारतीय परंपरा में आदर्श पत्नी और सहनशीलता की प्रतिमूर्ति माना जाता है। किंतु गहन विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि सीता का चरित्र केवल निष्क्रिय सहनशीलता तक सीमित नहीं है। अग्नि-परीक्षा के प्रसंग में जब राम उसके शील पर संदेह करते हैं, तब सीता का प्रत्युत्तर अत्यंत तीक्ष्ण और आत्मसम्मानपूर्ण है। वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड में सीता कहती हैं —

"किं मां असदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्रदारुणम्।
रूक्षं श्रावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतमिवा॥"[12]

अर्थात् हे वीर, आप मुझे इस प्रकार के कठोर, कर्णकटु वचन क्यों कह रहे हैं, मानो मैं कोई सामान्य स्त्री किसी सामान्य पुरुष से बात कर रही हूँ? यह संवाद सीता के आत्मगौरव और तार्किक प्रतिरोध की क्षमता का प्रमाण है। पुनः उत्तरकाण्ड में जब सीता को वनवास दिया जाता है, तो भी वह धैर्यपूर्वक अपने पुत्रों का पालन-पोषण करती है और अंततः भूमि में समा जाने का निर्णय लेती है — यह निर्णय भी उसकी स्वायत्त इच्छाशक्ति का प्रतीक माना जा सकता है, न कि केवल दैवीय नियति का परिणाम।

७.२ कैकेयी और मंदोदरी: जटिल नारी-मनोविज्ञान

कैकेयी का चरित्र रामायण में सर्वाधिक विवादास्पद है। यद्यपि परंपरागत दृष्टि से उसे राम के वनवास का कारण मानकर नकारात्मक रूप में देखा जाता है, किंतु आधुनिक समालोचकों ने यह तर्क दिया है कि कैकेयी का यह निर्णय मंथरा द्वारा उकसाए जाने तथा राजनीतिक असुरक्षा की भावना से प्रेरित था, जो उस युग की राजमहिषियों की सीमित शक्ति-संरचना को उजागर करता है [13]। इसी प्रकार, रावण की पत्नी मंदोदरी का चरित्र नैतिक विवेक तथा पत्नी-धर्म के मध्य संतुलन का प्रतिनिधित्व करता है — वह रावण को बार-बार सीता को लौटाने की सलाह देती है, जो उसकी नैतिक दूरदर्शिता को दर्शाता है।

८. महाभारत में नारी पात्र

महाभारत में नारी-पात्रों की जटिलता रामायण की तुलना में और अधिक गहन है, क्योंकि इसमें द्रौपदी, कुंती, गांधारी, सत्यवती जैसी नारियाँ केंद्रीय भूमिका में हैं।

८.१ द्रौपदी: प्रतिरोध की प्रतिनिधि

द्रौपदी का चरित्र संस्कृत साहित्य में सर्वाधिक शक्तिशाली नारी-चरित्रों में से एक माना जाता है। चीरहरण-प्रसंग में जब उसे भरी सभा में अपमानित किया जाता है, तब वह मौन स्वीकृति के स्थान पर एक तीक्ष्ण दार्शनिक-कानूनी प्रश्न उठाती है — क्या युधिष्ठिर, जो स्वयं को दाँव पर हार चुके थे, उसे दाँव पर लगाने के अधिकारी थे? यह प्रश्न महाभारत की सभा-पर्व में इस प्रकार वर्णित है —

"किं नु त्वं हारितो राजन् पूर्वमात्मानमथवा माम्।
इति पप्रच्छ राजानं भ्रातृंश्चैव युधिष्ठिरम्॥"[14]

यह प्रश्न आज भी विधिशास्त्र और नारी-अधिकार विमर्श में उद्धृत किया जाता है, क्योंकि यह संपत्ति के अधिकार, व्यक्तिगत स्वायत्तता तथा न्याय-व्यवस्था के मूलभूत प्रश्नों को स्पर्श करता है। सुकुमारी भट्टाचार्य के अनुसार द्रौपदी का यह प्रश्न महाभारत के संपूर्ण कथानक की नैतिक धुरी बन जाता है, जिसके इर्द-गिर्द युद्ध की अनिवार्यता स्वयं निर्मित होती है[4]।

८.२ कुंती और गांधारी: मातृत्व और नैतिक द्वंद्व

कुंती का चरित्र मातृत्व की जटिलताओं तथा सामाजिक मर्यादा और व्यक्तिगत निर्णय के मध्य द्वंद्व को प्रस्तुत करता है। कर्ण को त्यागने का उसका निर्णय जीवनपर्यंत उसे अपराधबोध से ग्रस्त रखता है, और युद्ध के अंत में वह कर्ण की माता होने का सत्य उजागर करती है — यह क्षण महाभारत के सर्वाधिक करुण प्रसंगों में गिना जाता है। गांधारी, जिसने अपने पति की अंधता के प्रति एकजुटता प्रदर्शित करते हुए स्वयं भी नेत्रों पर पट्टी बाँध ली, नैतिक त्याग और साथ ही दुर्योधन की माता के रूप में मौन प्रतिरोध का भी प्रतिनिधित्व करती है — युद्ध के पश्चात कृष्ण को दिया गया उसका श्राप इस बात का प्रमाण है कि उसकी नैतिक चेतना निष्क्रिय नहीं थी।

९. कालिदास के साहित्य में नारी

कालिदास संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि-नाटककार माने जाते हैं, और उनके साहित्य में नारी-चित्रण भावनात्मक सूक्ष्मता तथा काव्यात्मक सौंदर्य से परिपूर्ण है।

९.१ शकुंतला: आत्मसम्मान की प्रतिनायिका

अभिज्ञानशाकुन्तलम् की नायिका शकुंतला का चरित्र कालिदास की सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है। जब राजा दुष्यंत स्मृति-लोप के कारण शकुंतला को अस्वीकार करते हैं, तब उसका प्रत्युत्तर आत्मसम्मान और नैतिक दृढ़ता से परिपूर्ण है। महाभारत के मूल शाकुन्तलोपाख्यान की तुलना में कालिदास ने शकुंतला के चरित्र को अधिक मर्यादित एवं करुणामय रूप में गढ़ा, किंतु उसकी आत्मगर्विमा को कम नहीं होने दिया। चतुर्थ अंक में कण्व ऋषि द्वारा शकुंतला की विदाई के समय कहे गए शब्द —

"यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ता जडं दर्शनम्॥"[15]

केवल शकुंतला के प्रति स्नेह को ही नहीं, अपितु तत्कालीन समाज में पुत्री-विदाई की गहन मार्मिकता को भी अभिव्यक्त करते हैं। यह प्रसंग नारी के पारिवारिक संबंधों की भावनात्मक जटिलता को अत्यंत संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत करता है।

९.२ पार्वती: तपस्विनी नारी की छवि

कुमारसंभवम् में पार्वती का चरित्र एक भिन्न आयाम प्रस्तुत करता है — वह प्रेम प्राप्ति हेतु स्वयं कठोर तपस्या करने का निर्णय लेती है, जो परंपरागत निष्क्रिय नारी-छवि के विपरीत सक्रिय एवं आत्मनिर्णायक व्यक्तित्व को दर्शाता है। कालिदास लिखते हैं —

"तमेवमाराधयतः प्रसादं देवः प्रसन्नोऽप्यकरोत् चिरेणा॥"[16]

अर्थात् दीर्घकालिक तपस्या के पश्चात् ही शिव प्रसन्न होते हैं। यह प्रसंग नारी की दृढ़ इच्छाशक्ति तथा आत्मनिर्भरता का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है, जो कालिदास की काव्य-प्रतिभा की विशिष्टता है।

९.३ मालविका और अन्य नायिकाएँ

मालविकामणिमित्रम् में मालविका का चरित्र चतुराई, नृत्य-कला में दक्षता तथा प्रेम-निवेदन में साहस को प्रदर्शित करता है। विक्रमोर्वशीयम् में उर्वशी का चरित्र स्वर्गिक अप्सरा होते हुए भी मानवीय प्रेम-भावना से आबद्ध होकर मर्त्यलोक में जीवन व्यतीत करने का निर्णय लेती है, जो देवी और मानवी की सीमाओं को लांघने वाला साहसिक चरित्र-चित्रण है।

१०. भास, भवभूति एवं अन्य नाटककारों में नारी

भास के नाटकों में वासवदत्ता (स्वप्नवासवदत्तम्) का चरित्र त्याग और प्रेम के अद्भुत समन्वय को दर्शाता है। वह राज्य-हित के लिए स्वयं को पृष्ठभूमि में रखते हुए भी अपने प्रेम में अडिग रहती है। भवभूति के उत्तररामचरितम् में सीता का चरित्र वाल्मीकि रामायण की तुलना में और अधिक भावनात्मक गहराई से चित्रित हुआ है — विशेषतः वन में पुनः त्यागे जाने के प्रसंग में सीता की वेदना का चित्रण भवभूति की करुण रस की अद्वितीय क्षमता को प्रदर्शित करता है। भवभूति लिखते हैं —

"एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद् भिन्नः पृथक् पृथग्विश्रयते विवर्तना।"[17]

यह कथन स्वयं भवभूति की काव्य-दृष्टि को स्पष्ट करता है कि करुण रस ही समस्त रसों का मूल है — और सीता का चरित्र इस करुण रस का सर्वोत्तम माध्यम बनता है।

शूद्रक के मृच्छकटिकम् में वसंतसेना का चरित्र विशेष उल्लेखनीय है। यद्यपि वह एक गणिका है, तथापि उसका चरित्र प्रेम, त्याग तथा नैतिक श्रेष्ठता से परिपूर्ण है — यह दर्शाता है कि संस्कृत नाट्य-साहित्य में नारी का मूल्यांकन केवल सामाजिक वर्ग या पेशे के आधार पर नहीं, अपितु उसके नैतिक चरित्र के आधार पर किया गया है[18]।

११. गद्यकाव्य में नारी: बाणभट्ट का योगदान

बाणभट्ट की कादम्बरी संस्कृत गद्यकाव्य की सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जाती है, जिसमें कादम्बरी और महाश्वेता जैसी नायिकाएँ अत्यंत भावप्रवण एवं दार्शनिक गहराई से चित्रित हैं। महाश्वेता का चरित्र विशेषतः वियोग-श्रृंगार तथा आध्यात्मिक साधना के मध्य संतुलन का प्रतीक है, जो नारी-चरित्र की आंतरिक जटिलता को उजागर करता है[19]।

१२. तुलनात्मक विश्लेषण: कालखंडों में नारी की स्थिति

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर संस्कृत साहित्य में नारी-चित्रण के विकास-क्रम को निम्नलिखित तुलनात्मक दृष्टि से समझा जा सकता है।

वैदिक काल में नारी को शिक्षा, मंत्र-द्रष्टृत्व तथा दार्शनिक विमर्श में सापेक्ष स्वतंत्रता प्राप्त थी, जैसा कि लोपामुद्रा, गार्गी तथा मैत्रेयी के उदाहरणों से स्पष्ट होता है। यह वह युग था जब नारी की बौद्धिक क्षमता को सामाजिक मान्यता प्राप्त थी।

स्मृति-काल में यह स्वतंत्रता क्रमशः संकुचित हुई। मनुस्मृति जैसे ग्रंथों ने नारी को पिता, पति तथा पुत्र के संरक्षण में रहने योग्य बताया हुआ उसकी स्वतंत्र सत्ता को सीमित करने का प्रयास किया। यह कालखंड नारी-अधिकारों के ऐतिहासिक ह्रास का प्रतीक माना जा सकता है[3]।

महाकाव्य-काल (रामायण-महाभारत) में यद्यपि नारी सामाजिक रूप से पुरुष-प्रधान व्यवस्था के भीतर स्थित रही, तथापि सीता और द्रौपदी जैसी नायिकाओं ने नैतिक प्रश्न उठाकर तथा आत्मसम्मान की रक्षा कर एक सशक्त काव्यात्मक प्रतिरोध प्रस्तुत किया। यह दर्शाता है कि साहित्यिक कल्पना सामाजिक यथार्थ से आगे बढ़कर नारी को नैतिक-दार्शनिक केंद्र में स्थापित करने में सक्षम रही।

शास्त्रीय नाट्य-काव्य-काल (कालिदास, भास, भवभूति) में नारी-चित्रण भावनात्मक सूक्ष्मता, मनोवैज्ञानिक गहराई तथा सौंदर्यबोध से समृद्ध हुआ। शकुंतला, पार्वती, वासवदत्ता, सीता (उत्तररामचरितम्) जैसे पात्र नारी की आंतरिक चेतना को साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत सूक्ष्मता से व्यक्त करते हैं। यह कालखंड यह प्रमाणित करता है कि सामाजिक प्रतिबंधों के बावजूद साहित्यिक कल्पना में नारी को गरिमामय स्थान प्राप्त होता रहा।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक-धार्मिक नियंत्रण और साहित्यिक-काव्यात्मक स्वतंत्रता के बीच एक स्थायी अंतर्विरोध संस्कृत साहित्य के संपूर्ण इतिहास में विद्यमान रहा है — जहाँ धर्मशास्त्र नारी को नियंत्रित करने का प्रयास करते हैं, वहीं काव्य-नाट्य साहित्य उसे नैतिक, भावनात्मक तथा बौद्धिक गरिमा प्रदान करने का प्रयास करता रहा है।

१.३. विभिन्न दृष्टिकोणों का विश्लेषण

१.३.१ पारंपरिक/सांस्कृतिक दृष्टिकोण

पारंपरिक भारतीय आलोचना संस्कृत साहित्य की नारी-छवि को आदर्शकृत रूप में प्रस्तुत करती है — सीता को पातिव्रत्य, द्रौपदी को धैर्य, तथा शकुंतला को प्रेम-निष्ठा का प्रतीक मानकर उनकी पूजनीयता पर बल दिया जाता है। यह दृष्टिकोण नारी को दैवीय गुणों से संपन्न मानते हुए उसे सांस्कृतिक आदर्श के रूप में प्रस्तुत करता है[6]।

१.३.२ स्त्रीवादी/समालोचनात्मक दृष्टिकोण

आधुनिक स्त्रीवादी आलोचकों ने इस आदर्शिकरण पर प्रश्न उठाए हैं। उनके अनुसार सीता की अग्नि-परीक्षा तथा पुनः वनवास जैसे प्रसंग यह दर्शाते हैं कि नारी की पवित्रता को बार-बार प्रमाणित करने का दायित्व पुरुष-केंद्रित समाज नारी पर ही डालता है, जबकि पुरुष पात्रों से ऐसी अपेक्षा नहीं की जाती[4]। इसी प्रकार द्रौपदी के पाँच पतियों के साथ विवाह को लेकर भी यह तर्क दिया गया है कि महाभारत में इस प्रसंग को नैतिक दृष्टि से सहज स्वीकार्य बनाने के लिए अनेक स्पष्टीकरण दिए गए, जो यह दर्शाता है कि तत्कालीन समाज में भी यह विषय असामान्य माना जाता था।

१.३.३ समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा जाए तो संस्कृत साहित्य में नारी-चित्रण तत्कालीन वर्ण-व्यवस्था, राजनीतिक संरचना तथा आर्थिक परिस्थितियों से गहराई से प्रभावित था। राजमहिषियों (कैकेयी, गांधारी) का चरित्र-चित्रण राजनीतिक शक्ति-संघर्ष से जुड़ा है, जबकि सामान्य स्त्रियों (शबरी, अनसूया) का चित्रण भक्ति एवं सेवा-भाव पर केंद्रित है — यह वर्गीय भेद साहित्यिक चित्रण में भी प्रतिबिंबित होता है[13]।

१३.४ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कालिदास तथा भवभूति के नाटकों में नारी-पात्रों के आंतरिक द्वंद्व — जैसे शकुंतला का विस्मृति-जन्य अपमान, सीता की पुनः निर्वासन की पीड़ा — मानवीय भावनाओं के अत्यंत सूक्ष्म चित्रण का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जो संस्कृत साहित्य को केवल धार्मिक-नैतिक ग्रंथ न मानकर एक गहन मनोवैज्ञानिक साहित्य के रूप में स्थापित करता है।

इन विभिन्न दृष्टिकोणों की तुलना से यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत साहित्य में नारी-चित्रण को किसी एक दृष्टिकोण से पूर्णतः नहीं समझा जा सकता। यह साहित्य एक साथ आदर्शिकरण और प्रतिरोध, नियंत्रण और स्वतंत्रता, पूजा और वस्तुकरण के बहुस्तरीय आयामों को समाहित किए हुए है।

१४. निष्कर्ष

प्रस्तुत शोधपत्र के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत साहित्य में नारी-पात्रों की स्थिति एकरेखीय नहीं, अपितु बहुआयामी तथा ऐतिहासिक रूप से परिवर्तनशील रही है। वैदिक युग की सापेक्ष स्वतंत्रता से लेकर स्मृति-युगीन नियंत्रण तथा महाकाव्य एवं शास्त्रीय काव्य-नाट्य साहित्य में भावनात्मक-नैतिक गरिमा तक, नारी-चित्रण का यह विकास-क्रम भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना के जटिल इतिहास को प्रतिबिंबित करता है।

सीता, द्रौपदी, शकुंतला, पार्वती, कुंती, गांधारी, वासवदत्ता तथा वसंतसेना जैसी नायिकाएँ यह प्रमाणित करती हैं कि संस्कृत साहित्य ने नारी को केवल निष्क्रिय, आज्ञाकारी पात्र के रूप में नहीं, अपितु आत्मसम्मान, नैतिक विवेक तथा भावनात्मक गहराई से संपन्न स्वतंत्र चेतना के रूप में भी प्रस्तुत किया है। साथ ही, यह भी स्वीकार करना आवश्यक है कि यह साहित्य पितृसत्तात्मक सामाजिक ढाँचे के भीतर रचा गया, अतः इसमें नारी की स्वतंत्रता पूर्णतः निरपेक्ष नहीं, अपितु सामाजिक मर्यादाओं की सीमाओं के भीतर ही अभिव्यक्त होती है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य में नारी-पात्रों का विकास-क्रम भारतीय साहित्यिक परंपरा की उस गहन मानवीय संवेदनशीलता का प्रमाण है, जिसने सामाजिक प्रतिबंधों के बावजूद नारी को कथा के केंद्र में स्थापित रखा। भविष्य के शोधकर्ताओं के लिए यह आवश्यक है कि वे इस विषय पर क्षेत्रीय संस्कृत साहित्य, पुराण-साहित्य तथा उत्तर-शास्त्रीय काव्य-परंपरा के अप्रकाशित एवं कम अध्ययित स्रोतों का भी विश्लेषण करें, ताकि नारी-चित्रण के इस बहुआयामी इतिहास की और अधिक व्यापक समझ विकसित हो सके।

संदर्भ सूची (References)

1. Upadhyay B. Sanskrit Sahitya ka Itihas. Varanasi: Sharda Mandir; 1967.
2. Upadhyay B. Sanskrit Sahitya ka Itihas. Varanasi: Sharda Mandir; 1967. p. 112-118.
3. Altekar AS. The Position of Women in Hindu Civilization: From Prehistoric Times to the Present Day. Delhi: Motilal Banarsidass; 1959.
4. Bhattacharji S. Women and Society in Ancient India. Calcutta: Basumati Corporation; 1994.
5. Tripathi RV. Sanskrit Natya Sahitya: Ek Adhyayan. Delhi: Rashtriya Sanskrit Sansthan; 1990.
6. Pandey RB. Hindu Dharmakosh. Varanasi: Vishwavidyalaya Prakashan; 1978.
7. Thapar R. Sakuntala: Texts, Readings, Histories. New Delhi: Kali for Women; 1999.

8. Vatsyayan K. The Square and the Circle of the Indian Arts. New Delhi: Roli Books; 1997.
9. Rigveda. Griffith RTH (translator). Sacred Books of the East. Mandala 10, Sukta 85, 179.
10. Brihadaranyaka Upanishad. Chapter 3, Brahmana 6 and 8 (Gargi-Yajnavalkya Samvad).
11. Manu. Manusmriti. Adhyaya 9, Shloka 3.
12. Valmiki. Ramayana. Yuddhakanda, Sarga 116.
13. Valmiki. Ramayana. Ayodhyakanda, Sarga 9-12.
14. Vyasa. Mahabharata. Sabhaparva, Adhyaya 61.
15. Kalidasa. Abhijnanashakuntalam. Chaturtha Ank.
16. Kalidasa. Kumarasambhavam. Panchama Sarga.
17. Bhavabhuti. Uttararamacharitam. Tritiya Ank.
18. Shudraka. Mrichchhakatikam. Prathama Ank.
19. Banabhatta. Kadambari. Purvabhaga.
20. Chaudhuri NC. Hinduism: A Religion to Live By. London: Chatto & Windus; 1979.
21. Pandurang Vaman Kane. History of Dharmasastra. Vol. 2. Pune: Bhandarkar Oriental Research Institute; 1941.
22. Keith AB. A History of Sanskrit Literature. Oxford: Clarendon Press; 1928.
23. Winternitz M. History of Indian Literature. Vol. 1. Calcutta: University of Calcutta; 1927.
24. Sharma RS. Bharatiya Samajik Itihas. Delhi: Rajkamal Prakashan; 1980.
25. Chattopadhyaya S. Social Life in Ancient India. Calcutta: Academic Publishers; 1965.